जैनधर्म में भक्ति का स्थान

डा० सागरमल जैन

जैनधर्म के अनुसार प्रत्येक साधक का यह कर्तव्य है कि वह तीर्थंकरों की स्तुति करे। जैन साधना में स्तुति का स्वरूप बहुत कुछ भक्ति मार्ग की जप साधना या नामस्मरण से मिलता जुलता है। स्तुति अथवा भक्ति के माध्यम से साधक अपने अहंकार का नाश और सद्गुणों के प्रति अनुराग की वृद्धि करता है। लेकिन फिर भी हमें यह स्मरण रखना चाहिए कि जैनधर्म के अनुसार साधना के आदर्श के रूप में जिसकी स्तुति की जाती है उन आदर्श पुरुषों से किसी प्रकार की उपलब्धि की अपेक्षा नहीं होती। जैनधर्म का यह दृढ़ विश्वास है कि तीर्थंकर एवं सिद्ध परमात्मा किसी को कुछ नहीं दे सकते, वे मात्र साधना के आदर्श हैं। तीर्थंकर उसे न तो संसार से पार कर सकते हैं और न किसी अन्य प्रकार की भौतिक उपलब्धि में सहायक होते हैं। फिर भी स्तुति के माध्यम से साधक उनके गुणों के प्रति अपनी श्रद्धा को सजीव बना लेता है। साधक के सामने उनका महान् आदर्श जीवन्त रूप में उपस्थित हो जाता है। साधक भी अपने अन्तर हृदय में तीर्थंकरों के आदर्श का स्मरण करता हुआ अपनी आत्मा में एक आध्यात्मिक पूर्णता की भावना पैदा करता है। वह स्वयं मन में यह विचार करता है कि आत्मतत्त्व के रूप में मेरी आत्मा और तीर्थंकरों की आत्मा समान ही है, यदि मैं स्वयं प्रयत्न करूं तो उनके समान ही बन सकता हूँ। मुझे भी अपने पुरुषार्थ से उनके समान बनने का प्रयत्न करना चाहिए। जैन तीर्थंकर गीता के कृष्ण के समान यह उद्घोषणा नहीं करते कि तुम मेरी भक्ति करो, मैं तुम्हें सब पापों से मुक्त कर दूँगा (गीता १८।६६)। यद्यपि महावीर ने यह अवश्य कहा है कि मैं भय से रक्षा करने वाला हूँ (सूत्रकृतांग १।१।१६), फिर भी जैनधर्म की मान्यता तो यह रही है कि व्यक्ति केवल अपने ही प्रयत्नों से अपना

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आध्यात्मिक विकास या पतन करता है। स्वयं पाप से मुक्त होने का प्रयत्न न करके केवल भगवान् से मुक्ति की प्रार्थना करना, जैनधर्म के अनुसार सर्वथा निरर्थक है। इस प्रकार की विवेकशून्य प्रार्थनाओं ने मानव जाति को सब प्रकार से हीन, दीन एवं परापेक्षी बनाया है। जब व्यक्ति किसी ऐसे उद्धारक में विश्वास करने लगता है, जो उसकी स्तुति से प्रसन्न होकर उसे पाप से उबार लेगा तो इस प्रकार की निष्ठा से सदाचार की मान्यताओं को एक गहरा धक्का लगता है। जैन विचारकों की यह स्पष्ट मान्यता है कि केवल तीर्थंकरों की स्तुति करने मात्र से मोक्ष की प्राप्ति नहीं होती जब तक कि व्यक्ति स्वयं उसके लिए साधना न करे (आवश्यकचूर्णि)।

तीर्थंकर तो साधना मार्ग के प्रकाश-स्तम्भ हैं। जिस प्रकार गति करना जहाज का कार्य है उसी प्रकार साधना की दिशा में आगे बढ़ना साधक का कार्य है। जैसे प्रकाश-स्तम्भ की उपस्थिति में भी जहाज समुद्र में बिना गति किये उस पार नहीं पहुँचता है वैसे ही केवल नामस्मरण या भक्ति साधक को निर्वाण की प्राप्ति नहीं करा सकती, जब तक कि वह स्वयं उसके लिए सम्यक् प्रयत्न न करे। विष्णु-पुराण में कहा गया है—

स्वधर्म कर्म विमुखः कृष्णकृष्णेतिवादिनः।
ते हरिद्वेषिणो मूढाः धर्मार्थं जन्म यद्धरेः॥

जो लोग अपने कर्तव्य को छोड़ बैठते हैं और केवल कृष्ण-कृष्ण कहकर भगवान् का नाम जपते हैं, वे वस्तुतः भगवान् के शत्रु हैं और पापी हैं, क्योंकि धर्म की रक्षा के लिए तो स्वयं भगवान् ने भी जन्म लिया था। बाइबिल में भी कहा गया है कि हर कोई, जो ईसा-ईसा पुकारता है, स्वर्ग के राज्य में प्रवेश नहीं पायेगा; अपितु वह पायेगा जो परम पिता की इच्छा के अनुसार काम करता है (बाइबल, जोन २.९-११)। महावीर ने कहा है कि एक मेरा नामस्मरण करता है और दूसरा मेरी आज्ञाओं का पालन करता है, उनमें जो मेरी आज्ञाओं के अनुसार आचरण करता है वही सच्चे रूप में मेरी उपासना करता है।

फिर भी हमें स्मरण रखना चाहिए कि जैन परम्परा में भक्ति का लक्ष्य आत्मस्वरूप का बोध है, अपने में निहित परमात्मा को पहचानना है। आचार्य कुन्दकुन्द नियमसार में लिखते हैं कि सम्यक्

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ज्ञान और आचरण से युक्त होना, निर्वाण अभिमुख होना इसे ही गृहस्थ और श्रमण की वास्तविक भक्ति कहा गया है। मुक्ति को प्राप्त पुरुषों के गुणों का कीर्तन करना व्यावहारिक भक्ति है, वास्तविक भक्ति तो आत्मा को मोक्षपथ में योजित करना है। राग-द्वेष एवं सर्व विकल्पों का परिहार करके विशुद्ध आत्मतत्त्व से योजित होना यही वास्तविक भक्ति है। ऋषभ आदि सभी तीर्थंकर इसी भक्ति के द्वारा परम पद को प्राप्त हुए हैं (नियमसार १३४-४०)। इस प्रकार भक्ति या स्तवन मूलत: आत्मबोध है। जैन दर्शन में भक्ति के सच्चे स्वरूप को स्पष्ट करते हुए उपाध्याय देवचन्द्रजी लिखते हैं—

> अज-कुल-गत केशरी लहे रे निज पद सिंह निहाल।
> तिम प्रभु भक्ति भवी लहे रे आतम शक्ति संभाल॥

जिस प्रकार भेड़-बकरियों के साथ पला हुआ सिंह का बच्चा वास्तविक सिंह के दर्शन से अपने प्रसुप्त सिंहत्व को प्रकट कर लेता है, उसी प्रकार साधक तीर्थंकरों के गुणकीर्तन या स्तवन के द्वारा निज में जिनत्व का शोध कर लेता है, स्वयं में निहित परमात्मशक्ति को प्रकट कर लेता है।

लेकिन इसका यह अर्थ नहीं है कि जैन साधना में भगवान् की स्तुति निरर्थक है। जैन साधना यह स्वीकार करती है कि भगवान् की स्तुति हमारी प्रसुप्त अन्तश्चेतना को जागृत करती है और हमारे सामने साधना के आदर्श का एक जीवन्त चित्र उपस्थित करती है। मात्र यही नहीं, वह हमें उस आदर्श की प्राप्ति के लिए प्रेरणा भी देती है। जैन विचारकों ने यह स्वीकार किया है कि भगवान् की स्तुति के माध्यम से व्यक्ति अपना आध्यात्मिक विकास कर सकता है। यद्यपि इसमें प्रयत्न व्यक्ति का ही होता है लेकिन साधना के आदर्श उन महापुरुषों का जीवन उसकी प्रेरणा का निमित्त अवश्य होता है। उत्तराध्ययन सूत्र में कहा गया है कि स्तवन से व्यक्ति की दर्शन विशुद्धि होती है। उसका दृष्टिकोण सम्यक् बनता है और परिणामस्वरूप वह आध्यात्मिक विकास की दिशा में आगे बढ़ सकता है। यद्यपि भगवद्भक्ति के फलस्वरूप पूर्व संचित कर्मों का क्षय होता है, तथापि इसका कारण परमात्मा की कृपा नहीं वरन् व्यक्ति के दृष्टिकोण की विशुद्धि ही है। जैनाचार्य भद्रबाहु ने इस बात को बड़े ही स्पष्ट रूप में स्वीकार किया है कि भगवान् के

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

नामस्मरण से पापों के पुंज का नाश हो जाता है (आवश्यकनिर्युक्ति १०७६)। आचार्य विनयचंद्र भगवान् की स्तुति करते हुए कहते हैं—

पाप-पराल को पुंज बन्यो अति, मानो मेरू आकारो।
ते तुम नाम हुताशन सेती, सहज ही प्रजलत सारो॥

हे प्रभु आपकी नाम रूपी अग्नि में इतनी शक्ति है कि उससे मेरु समान पाप समूह भी शीघ्र ही नष्ट हो जाता है। किंतु यह प्रभाव प्रभु के नाम का नहीं अपितु साधक की आत्मिक शक्ति का है। जैसे मालिक के जागने पर चोर भाग जाते हैं, उसी प्रकार प्रभु के स्वरूप के ध्यान से आत्म-चेतना या स्वशक्ति का भान होता है और पाप रूपी चोर भाग जाते हैं। ●

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org